सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

संविधान का अनुच्छेद 220 :

स्थायी न्यायाधीश रहने के पश्चात्

विधि-व्यवसाय करने पर निर्बन्धन

पर

बहत्तरवीं रिपोर्ट

भारत सरकार

विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय

विधि कार्य विभाग

अध्यक्ष,
विधि आयोग,
भारत सरकार
10 अप्रैल, 1978

प्रिय मंत्री जी,

मैं इसके साथ भारत के विधि आयोग की बहत्तरवीं रिपोर्ट भेज रहा हूं जो इस प्रश्न से सम्बद्ध है कि क्या संविधान के अनुच्छेद 220 में संशोधन किया जाए जिससे उच्च न्यायालयों के सेवा निवृत्त न्यायाधीशों को कुछ अवधि बीत जाने के पश्चात् अपने राज्यों में विधि व्यवसाय करने की अनुज्ञा दे दी जाए।

जैसा कि रिपोर्ट के प्रथम पैरा में बताया गया है विधि आयोग द्वारा इस विषय पर विचार-विमर्श सरकार के कहने पर किया गया। विधि आयोग ऐसे किसी संशोधन के पक्ष में नहीं है जिसके कारण रिपोर्ट में दिये गये हैं।

यह बता देना उपयुक्त होगा कि रिपोर्ट केवल एक विनिर्दिष्ट विषय से सम्बद्ध है और इस प्रकार वह न्यूनाधिक रूप में टिप्पणी के प्रकार की है। पर चूंकि यह मामला काफी महत्व का है इसलिए संक्षिप्त होते हुए भी हमने इसे रिपोर्ट के रूप में देना बेहतर समझा।

सादर,

भवदीय,

(एच. आर. खन्ना)

माननीय श्री शान्ति भूषण,
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

		पृष्ठ
1.	रिपोर्ट की उत्पत्ति और आयोग की राय	1
2.	संविधान सभा में बहस	2
3.	डाक्टर सप्रू की राए	2
4.	1956 में अनुच्छेद 220 का संशोधन	3
5.	वर्तमान उपबन्ध लाभप्रद हैं	3
6.	न्यायपालिका की स्वतंत्रता	4
7.	इंग्लैण्ड में परिस्थिति	4
8.	विधि आयोग की चौदहवीं रिपोर्ट में व्यक्त विचार	4
9.	निष्कर्ष	4

परिशिष्ट

परिशिष्ट 1.	संविधान सभा में संविधान के अनुच्छेद 220 से सुसंगत बहसों का भावार्थ	5
परिशिष्ट 2.	लोकसभा में संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा अनुच्छेद 220 के संशोधन से सुसंगत बहसों का भावार्थ ..	7

1. रिपोर्ट की उत्पत्ति और आयोग की राय—तमिलनाडु के विधि मंत्री ने विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री से एक पत्र-व्यवहार में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधिपति, न्यायमूर्ति पी. बी. मुखर्जी के भाषणों[1] की चर्चा की है जिनके दौरान विद्वान मुख्य न्यायाधिपति ने निम्नलिखित कहा था :

> "भारत में न्यायपालिका को एक अधिक गम्भीर खतरा न्यायाधीश के अपने ही उच्च न्यायालय में विधि-व्यवसाय करने के अधिकार का आहरण है जिस वृत्तिक अधिकार के लिए कि वह अपने जीवन काल में अर्हित हुआ है। आज न्यायपीठ में स्थान पाने की कीमत अपने घर के उच्च न्यायालय में, उस उच्च न्यायालय में जहां वह नामांकित हुआ और जहां उसने न्यायपीठ के लिए नियुक्त किए जाने से पूर्व विधि-व्यवसाय किया, विधि-व्यवसाय करने के वृत्तिक अधिकार का आहरण है।"

भाषणों के दौरान आगे निम्नलिखित भी कहा गया था :

> "न्यायाधीशों को विधि-व्यवसाय करने के लिए न्यायपीठ से आ जाने से रोकने वाला यह सांविधानिक वर्जन और निर्बन्धन न्यायपालिका की स्वतंत्रता के मूल पर प्रहार करता है।"

तमिलनाडु के विधि मंत्री ने तद्नुसार यह सुझाव दिया है कि संविधान के अनुच्छेद 220 में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाए :

> "परन्तु जो व्यक्ति उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है उस पर उसी उच्च न्यायालय में या भारत के किसी प्राधिकारी के समक्ष अभिवचन या कार्य न करने का निर्बन्धन निम्नलिखित दशाओं में प्रवर्तित न होगा, अर्थात् :—
>
> (i) यदि वह व्यक्ति, चाहे अपने विकल्प पर या अन्यथा, किसी अन्य उच्च न्यायालय को न्यायाधीश के रूप में अन्तरित हो गया है और उस उच्च न्यायालय में उसने अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख से ठीक पहले कम से कम तीन वर्ष की अवधि तक पद धारण किया है ; या
>
> (ii) यदि उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख से कुल चार वर्ष की अवधि समाप्त हो चुकी है ;
>
> और तद्नुसार प्रत्येक ऐसा व्यक्ति भारत के किसी उच्च न्यायालय में या किसी प्राधिकारी के समक्ष और उच्चतम न्यायालय में अभिवचन या कार्य करने का हकदार होगा।"

विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री ने एक टिप्पण में निदेश दिया है कि अनुच्छेद 220 में प्रस्थापित संशोधन के संबंध में विधि आयोग से परामर्श किया जाए[2]।

विधि आयोग संविधान के अनुच्छेद 220 में तमिलनाडु राज्य के विधि मंत्री द्वारा सुझाया गया संशोधन करने के पक्ष में नहीं है।

---

1. पी. बी. मुखर्जी, क्रिटिकल प्राबलम्स आफ दि इण्डियन कंस्टीट्यूशन (1967) पृष्ठ 113-115।

2. विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री का टिप्पण तारीख 23 मार्च 1978 विधि कार्य विभाग यू० ओ० नं० 1507/78, परामर्श 'क' अनुभाग तारीख 23 मार्च 1978।

2. **संविधान सभा में बहस**—संविधान के प्रारूपण के समक्ष यह प्रश्न पर्याप्त वाद-विवाद का विषय रहा है कि कोई व्यक्ति जिसने उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण किया हो उस पद पर न रहने के पश्चात् किसी न्यायालय में विधि-व्यवसाय करने का हकदार होना चाहिये या नहीं। प्रारूपण समिति द्वारा प्रारूपित प्रारूप अनुच्छेद 196 (जिसने अन्ततः अनुच्छेद 220 का रूप धारण किया) इस प्रकार था[1] :—

"196. कोई व्यक्ति जो—

(क) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में, या

(ख) विधि-व्यवसाय क्षेत्र से भर्ती किए जाने पर उच्च न्यायालय के ऊपर न्यायाधीश या अस्थायी न्यायाधीश के रूप में,

पद धारण कर चुका है, भारत राज्यक्षेत्र में के किसी न्यायालय में या किसी प्राधिकारी के समक्ष अभिवचन या कार्य न करेगा।"

विचार-विमर्श के पश्चात् पारूप अनुछेद 196 को डाक्टर अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन के अनुसार संशोधित किया गया। अनुच्छेद जिस रूप में स्वीकार किया गया वह नीचे दिया गया है[2] :

"196. **जो व्यक्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पद धारण कर चुका हो, उसके द्वारा न्यायालयों में या किसी प्राधिकारी के समक्ष विधि व्यवसाय करने का प्रतिषेध**—कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद इस संविधान के प्रारम्भ के बाद धारण कर चुका है, भारत राज्यक्षेत्र में के किसी न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष अभिवचन या कार्य न करेगा।"

संविधान सभा ने श्री हुकम सिंह[3] द्वारा प्रस्तावित एक संशोधन को अस्वीकार कर दिया जिसके अनुसार विधि-यवसाय करने का वर्जन केवल उस उच्च न्यायालय की अधिकारिता के अन्दर ही प्रवर्तित होता जिसमें सम्बद्ध व्यक्ति न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है।

3. **डा. सप्रू की राय**—विधि व्यवसाय पर रोक लगाने के बारे में एक बात जिसका प्रारूपण समिति पर प्रभाव पड़ा भारत में विधि-व्यवसाय के क्षेत्र में वरिष्ठ विधिवेत्ता डाक्टर तेज बहादुर सप्रू द्वारा अभिव्यक्त मत था। डाक्टर सप्रू के अनुसार एक बार जब कोई व्यक्ति न्यायिक पद स्वीकार कर लेता है फिर उसे किसी भी दशा में पुनः विधि-व्यवसाय के क्षेत्र में नहीं जाना चाहिये। इस संबंध में उन्होंने इंग्लैंड की प्रथा की चर्चा की जहां किसी व्यक्ति द्वारा एक बार कोई न्यायिक पद स्वीकार कर लिए जाने के पश्चात् उसे फिर से विधि-व्यवसाय के क्षेत्र में नहीं आने दिया जाता।[4]

"मैं समझता हूं आगे से नियम यह होना चाहिये कि जो कोई बारिस्टर या अभिवक्ता न्यायपीठ में पद स्वीकार करता है वह सेवानिवृत्ति पर कहीं भी पुनः विधि-व्यवसाय करने से प्रतिसिद्ध कर दिया जाएगा . . . . . .।

---

1. शिवा राव, डि फ्रेमिंग आफ इंडियाज कंस्टीट्यूशन (1967), जिल्द 3, प्रारूप अनुच्छेद 196 (प्रारूपण समिति द्वारा तैयार किया गया) प्रारूप संविधान, तारीख 21 फरवरी, 1948।

2. सं० स० बहस, जिल्द 8, पृष्ठ 685 (7 जून, 1949)।

3. सं० स० बहस, जिल्द 8, पृष्ठ 680 (7 जून 1949)।

4. शिवा राव, दिफ्रेमिंग आफ इंडियाज कंस्टीट्यूशन (1967) जिल्द 4, पृष्ठ 173।

मेरी यह भी राय है कि स्थायी न्यायाधीशों के मुकाबले में अस्थायी या कार्यकारी न्यायाधीश अधिक नुकसान करते हैं जबकि वे थोड़ी अवधि के लिये न्यायपीठ में अपने[1] स्थान पर रहने के पश्चात् पुनः विधि-व्यवसाय के क्षेत्र में आते हैं। न्यायपीठ में स्थान से उन्हें अपने सहयोगियों से वरिष्ठता प्राप्त हो जाती है और उन अधीनस्थ न्यायाधीशों को उलझन हो जाती है जो किसी समय उनके नियंत्रणाधीन थे और इस प्रकार न्याय में सहायक होने के बजाये वे स्वतंत्र न्याय में बाधक बन जाते हैं . . . . ।

यह सब होते हुए भी कहा यह जाता है कि इन बातों का उपाय न्यायाधीशों की पेंशन बढ़ाना और छोटी अवधियों के लिये पदों पर रहने के पश्चात् न्यायाधीशों को कुछ पेंशन प्राप्त कराना है। मैं इस बात से सहमत हूं कि उन्हें पुनः विधि-व्यवसाय करने की अनुज्ञा न देने के लिये यह एक अच्छा आधार होगा, किन्तु पेंशन की व्यवस्था हो या न हो इंग्लैण्ड में यह एक बहुत पुरानी परम्परा है कि विधि-व्यवसाय क्षेत्र के किसी सदस्य को कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये जिससे यह धारणा होती है कि न्यायिक पद धारण करने के कारण वह अपने विरोधी के मुकाबले में अधिक प्रभावशील हो जाता है।"

4. 1956 **में अनुच्छेद** 220 **का संशोधन**—अनुच्छेद 220 को संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, 1956 की धारा 13 द्वारा संशोधित किया गया। पुराने अनुच्छेद के स्थान पर नया अनुच्छेद इस प्रकार है :

> "220. कोई व्यक्ति जो इस संविधान के प्रारंभ के बाद उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उच्चतम न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों के सिवाय भारत के किसी न्यायालय अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष अभिवचन या कार्य न करेगा।
>
> **व्याख्या**—इस अनुछेद में "उच्च न्यायालय" पदावलि के अन्तर्गत संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, 1956 के प्रारंभ से पूर्व यथा वर्तमान प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में उल्लिखित राज्य का उच्च न्यायालय नहीं है।"

5. **वर्तमान उपबन्ध लाभप्रद है**—नए अनुच्छेद से उत्पन्न परिस्थिति यह है कि कोई व्यक्ति जो इस संविधान के प्रारम्भ के बाद उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है उच्चतम न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों के सिवाय भारत के किसी न्यायालय अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष विधि-व्यवसाय करने से विवर्जित है। हमारी राय में जिस रूप में यह उपबंध है वह लाभप्रद है। कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है उच्चतम न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों में विधि-व्यवसाय करने से वर्जित नहीं है। उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश का पद धारण कर चुकने के पश्चात् किसी व्यक्ति को उसी न्यायालय या उस न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय में विधि व्यवसाय करने की अनुज्ञा देने से निश्चय ही उलझन वाली और अवांछनीय परिस्थितियां पैदा होंगी। ऐसा मार्ग अपनाने से दुरुपयोग तथा सम्भवतः रिष्टि की भी भारी सम्भावनाएं हैं। इससे न्यायाधीश के पद से संलग्न प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचेगा। जिस तारीख को कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर नहीं रहता उसके तथा जिस तारीख को वह पुनः विधि-व्यवसाय प्रारम्भ करता है उसके बीच समयान्तर से ऐसे मार्ग को औचित्य नहीं मिल जाता जो कि अपने आप में अवांछनीय है।

---

[1] शिवा राव, मुख्य जिल्द में उद्धृत शब्द "पद" है, पृष्ठ 502।

6. **न्यायपालिका की स्वतंत्रता**—आयोग इस राय को मानने में असमर्थ है कि अनुच्छेद 220, जैसा कि वह इस समय है, किसी भी प्रकार न्यायपालिका की स्वतंत्रता को प्रभावित करता है। इसके विपरीत आयोग की यह राय है कि जिस उच्च न्यायालय का कोई व्यक्ति स्थायी न्यायाधीश रह चुका है उसी उच्च न्यायालय में उसके द्वारा विधि-व्यवसाय करने पर प्रतिबन्ध लगाना न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने की दिशा में एक कदम है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बाहरी दबाव का ही खतरा नहीं है उसे उसी सीमा तक आन्तरिक दबाव से भी हानि हो सकती है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि जिस न्यायालय का कोई व्यक्ति न्यायाधीश रह चुका है उसी न्यायालय में विधि-व्यवसाय प्रारंभ या पुनः प्रारंभ करने की सम्भाव्यता से कभी-कभी मानसिक दबाव पैदा हो सकता है और अनजाने तौर पर भी दृष्टिकोण प्रभावित हो सकता है।

7. **इंग्लैण्ड में परिस्थिति**—जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट[1] डाक्टर सप्रू के विचारों से प्रतीत होता है इंग्लैंड में कोई व्यक्ति न्यायिक नियोजन स्वीकार करने के पश्चात् पुनः विधि-व्यवसाय के क्षेत्र में नहीं जाता। इस संदर्भ में आर. एम. जैकसन[2] की दि मशीनरी आफ जस्टिस इन इंग्लैण्ड का निर्देश किया जा सकता है जिसमें यह कहा गया है :

> "न्यायाधीश पद का अर्थ है विधि-व्यवसाय के क्षेत्र में या राजनीति में भाग न लेना। हाल का कोई भी ऐसा दृष्टान्त नहीं है जब कि किसी न्यायाधीश ने त्याग-पत्र दिया हो और वह पुनः विधि-व्यवसाय के या राजनीति के क्षेत्र में चला गया हो यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि वह वैसा नहीं कर सकता।"

8. **विधि आयोग की चौदहवीं रिपोर्ट में व्यक्त विचार**—श्री एम. सी. सीतलवाड़ की अध्यक्षता में विधि आयोग ने अपनी चौदहवीं रिपोर्ट[3] में अपना यह विचार व्यक्त किया कि सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को विधि-व्यवसाय करने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए। आयोग ने अनुच्छेद 220 में किए गए उस परिवर्तन पर भी खेद प्रकट किया जिसके फलस्वरूप उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को विधि-व्यवसाय करने का सीमित अधिकार प्रदान किया गया। आयोग की राय में इस प्रकार के विधि-व्यवसाय से न्यायालयों की प्रतिष्ठा और सामान्यतया न्याय प्रशासन को भारी हानि पहुंचती है।

9. **निष्कर्ष**—इसलिए विधि आयोग अनुच्छेद 220 में यथा प्रस्तावित कोई संशोधन करने के विरुद्ध है।

एच. आर. खन्ना,
अध्यक्ष।

नई दिल्ली ;
10 अप्रैल, 1978

पी. एम. बख्शी,
सदस्य-सचिव

---

1. ऊपर का पैरा 3।
2. आर० एम० जैकसन दि मशीनरी आफ जस्टिस इन इंग्लैण्ड (छठा संस्करण), पृष्ठ 378।
3. भारत का विधि आयोग, चौदहवीं रिपोर्ट (न्यायिक प्रशासन का सुधार) जिल्द 1, पृष्ठ 88, पैरा 50।

परिशिष्ट 1

संविधान सभा में संविधान के अनुच्छेद 220 से सुसंगत बहसों का भावार्थ

प्रारूप अनुच्छेद 196 पर, जिसने अन्ततः संविधान के अनुच्छेद 220 का रूप धारण किया, संविधान सभा के बहस 7 जून 1949[1] को हुई। डाक्टर अम्बेडकर ने प्रारूप अनुच्छेद 196 का एक संशोधन प्रस्तावित किया जिसमें यह प्रस्थापना की गई थी कि उस अनुच्छेद के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रख दिया जाए :—

> "196. कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद इस संविधान के प्रारंभ के बाद धारण कर चुका है, भारत राज्यक्षेत्र में के किसी न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष अभिवचन या कार्य न करेगा।"

उन्होंने इसे प्रारूप अनुच्छेद के शब्दों में हेर-फेर मात्र बताया। सरदार हुकम सिंह ने प्रस्तावित किया कि प्रारूप अनुच्छेद 196 में "भारत राज्य-क्षेत्र में के" शब्दों के स्थान पर, "उस उच्च न्यायालय की अधिकारिता के अन्दर" शब्द रख दिए जाएं। उन्होंने कहा कि इस विषय पर मेरे लिए भाषण देना आवश्यक नहीं है क्योंकि संशोधन स्वतः स्पष्ट है।

श्री एच. वी. कामथ सरदार हुकम सिंह के संशोधन के पक्ष में थे क्योंकि उनका यह ख्याल था कि प्रारूप अनुच्छेद में यथा प्रस्तावित व्यापक सांविधानिक प्रतिषेध अनावश्यक, और "मैं कहना चाहूंगा, अलोकतंत्रीय" है।

प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना ने इंग्लैण्ड की प्रथा की चर्चा की और उनका यह मत था कि जो कोई व्यक्ति न्यायाधीश रह चुका है उसे विधि-व्यवसाय से विवर्जित कर देना चाहिए। वे तो इस प्रतिबन्ध को उन लोगों पर भी लागू करना चाहते थे जो संविधान के प्रारम्भ से पहले न्यायाधीश रह चुके थे।

श्री महावीर त्यागी ने कहा कि यदि वकीलों को न्यायाधीश बनाया जाता है और सेवा-निवृत्ति के पश्चात् उन्हें न्यायालयों में विधि-व्यवसाय करने की इजाजत भी दी जाती है तो वे "न्याय" के महान पद को विकृत कर देंगे :

> "इन पदों को वे सेवा निवृत्ति के पश्चात् और अधिक फायदेमंद विधि-व्यवसाय के साधन के रूप में प्रयुक्त करेंगे।"

श्री बी. एम. गुप्ते का यह विचार था कि उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय या अन्य उच्च न्यायालयों में विधि-व्यवसाय करने से विवर्जित नहीं करना चाहिए।

कुछ विचार-विमर्श के पश्चात् डाक्टर अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन के अनुसार संविधान में यथा संशोधित अनुच्छेद 196 जोड़ा गया। स्वीकार किया गया अनुच्छेद इस प्रकार था।[2] :—

---

1. सं० स० बहस, जिल्द 8, पृष्ठ 680 से 683 (7 जून 1949)।

2. सं० स० बहस, जिल्द 8, पृष्ठ 685 (7 जून 1949)।

"196. जो व्यक्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पद धारण कर चुका है उसके द्वारा न्यायालयों में या किसी प्राधिकारी के समक्ष विधि-व्यवस्था करने का **प्रतिषेध**—कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद इस संविधान के प्रारंभ के बाद धारण कर चुका है, भारत राज्यक्षेत्र में के किसी न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष अभिवचन या कार्य न करेगा।"

इस चर्चा को पूरा करने के लिए यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि न्यायाधीशों की सेवा निवृत्ति की आयु से संबंधित प्रारूप अनुच्छेद 193 पर हुई बहस में[1] इस बात के पक्ष में बोलते हुए कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष होनी चाहिए श्री के. एम. मुन्शी ने निम्नलिखित बात भी[2] कही :—

> 'न्यायाधीशों को सेवा निवृत्ति के पश्चात् विधि-व्यवसाय करने की इजाजत नहीं दी जाती ; अन्यथा अपनी पदावधि के अन्तिम वर्षों में ऐसा आचरण करने की प्रवृत्ति हो सकती है जिससे सेवा निवृत्ति के पश्चात् विधि-व्यवसाय में वृद्धि हो।"

---

1. सं० स० बहस, जिल्द 8, पृष्ठ 668 से 675 (7 जून 1949)।
2. सं० स० बहस, जिल्द 8, पृष्ठ 670 (7 जून 1949)।

परिशिष्ट 2

लोक-सभा संविधान सप्तम संशोधन अधिनियम, 1956 द्वारा अनुच्छेद 220 के संशोधन से सुसंगत बहसों का भावार्थ

मूल अनुच्छेद—मूल रूप में यथा अधिनियमित संविधान में निम्नलिखित[1] उपबंध है :—

> "220 कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद इस संविधान के प्रारंभ के बाद धारण कर चुका है, भारत राज्यक्षेत्र में के किसी न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष अभिवचन या कार्य न करेगा।"

संशोधन विधेयक तथा उद्देश्य और कारण—यह प्रश्न कि क्या न्यायाधीशों को सेवा निवृत्ति के पश्चात् विधि-व्यवसाय करने की इजाजत दी जाए या नहीं संसद् के समक्ष विचारार्थ तब प्रस्तुत हुआ जब संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर विचार-विमर्श किया गया जो कि अन्ततः संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, 1956 के रूप में पारित हुआ। विधेयक से संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन में खण्ड 12 के उद्देश्य की व्याख्या की जो इस प्रकार थी[2] :—

> "**खण्ड** 12. विधि-व्यवसाय क्षेत्र से उच्च न्यायाय के लिए न्यायाधीश चुनने को प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण न्यायपीठ से उनकी सेवावृत्ति के पश्जात् उनके द्वारा विधि-व्यवसाय करने पर अनुच्छेद 220 में अन्तर्विष्ट पूर्ण प्रतिबंध है।"

यह उल्लेखनीय है कि विधेयक का खण्ड 12 निम्न प्रकार का था[3]:—

> "12. संविधान के अनुच्छेद 220 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रख दिया जाएगा, अर्थात् :—
>
> "220. कोई व्यक्ति जो इस संविधान के प्रारंभ के बाद उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उच्चतम न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों के सिवाय भारत के किसी न्यायालय अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष अभिवचन का कार्य न करेगा।"

संयुक्त समीति—गृह मंत्री (दिवंगत पंडित गोविन्द वल्लभ पंत) ने विधेयक को सदनों की एक संयुक्त समिति को[4] निर्दिष्ट करने का प्रस्ताव किया और इस प्रस्ताव पर बहस के दौरान अनेक बातें उठायी गई। संयुक्त समिति ने[5] विधेयक के सुसंगत खण्ड में किसी परिवर्तन का सुझाव नहीं दिया। जब संयुक्त समिति की रिपोर्ट पर विधेयक के साथ-साथ विचार-विमर्श हुआ तब बहसों के दौरान और भी बातें उठायी गई :[6]

---

1. शिवाराव, विशिष्ट दस्तावेज, जिल्द 4, पृष्ठ 826, पुनरीक्षित प्रारूप संविधान, खण्ड 220।
2. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 19 (14 अप्रैल, 1956)।
3. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 7।
4. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 39 बांई ओर का कालम।
5. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 के बारे में संयुक्त समिति की रिपोर्ट संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 161।

संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही जिल्द 1, पृष्ठ 215, बांई ओर का कालम (4 सितम्बर, 1956)

प्रमुख भाषणकर्ताओं द्वारा उठाई गई कुछ महत्वपूर्ण बातों को संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है।

श्री टेक चन्द की राय—श्री टेक चन्द ने इस बात पर जोर देने के पश्चात् कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के आचरण का "सीजर की पत्नी के समान बेदाग" कहावत के अनुरूप होना आवश्यक है, अनुच्छेद 220 में प्रस्थापित संशोधन के सम्बन्ध में निम्नलिखित शब्दों में शंकाएं[1] प्रकट की :

"किन्तु जब कोई न्यायाधीश जो किसी उच्च न्यायालय की न्यायपीठ में बैठ चुका हो किसी मुकदमेबाज की ओर से उसकी अर्जियां और उसके निवेदन प्रस्तुत करते हुए परामर्श के रूप में किसी अन्य उच्च न्यायालय में विधि-व्यवसायी के रूप में उपस्थित होता है तो उससे न्यायाधीश की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती और हम समझते हैं उससे उस व्यवस्था की प्रतिष्ठा भी नहीं बढ़ती है।"

श्री पी. एन. सप्रू और श्री बी. के. राय—श्री पी. एन. सप्रू[2] इस बात से तो सहमत थे कि किसी भी न्यायाधीश के लिए उस न्यायालय में विधि व्यवसाय करना ठीक नहीं होगा जिसका कि वह सदस्य रह चुका है किन्तु वह इसे समझने में असमर्थ थे कि यदि किसी उच्च न्यायालाय का न्यायाधीश किसी अन्य राज्य में विधि-व्यवसाय करे तो उससे उसको किस प्रकार फायदा हो सकेगा। उन्होंने प्रस्थापित संशोधन का समर्थन किया।

प्रस्थापित संशोधन का समर्थन करते हुए कटक के श्री बी. के. राय[3] ने संविधान सभा में दिये गये भाषाओं की चर्चा की। उनकी यह राय थी कि उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को केवल उस उच्च न्यायालय और उसके अधीनस्थ न्यायालयों में विधि-व्यवसाय करने से विवर्जित करना चाहिए।

श्री सी. सी. शाह—मुम्बई के श्री सी. सी. शाह[4] ने प्रस्थापित संशोधन का विरोध किया। उन्होंने कहा कि यह प्रतिबंध "बहुत वाद-विवाद और गम्भीर विचार-विमर्श के पश्चात्" संविधान में रखा गया यद्यपि यह भारत शासन अधिनियम में नहीं था। उन्होंने यह भी कहा कि यदि प्रतिबन्ध को ढीला करना ही है तो यह ढील उच्चतम न्यायालय में विधि-व्यवसाय करने तक सीमित होनी चाहिए।

श्री एन. सी. चटर्जी—प्रस्थापित संशोधन का समर्थन करते हुए[5] श्री एन. सी. चटर्जी ने कहा कि मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि उच्च न्यायालय का

---

1. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 80, दांई ओर का कालम (27 अप्रैल, 1956)।

2. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 114, दांई ओर का कालम (4 सितम्बर, 1956)।

3. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 244, 245 (4 सितम्बर, 1956)।

4. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 320--321 (5 सितम्बर, 1956)।

1. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 324--326 (5 सितम्बर, 1956)।

कोई न्यायाधीश अपने समक्ष विधि-व्यवसायी के रूप में उपस्थित होने वाले उच्च न्यायालय के किसी अन्य सेवानिवृत्त न्यायाधीश से प्रभावित नहीं होगा । श्री चटर्जी यह भी चाहते थे कि अन्य अधिकरणों के समक्ष विधि-व्यवसाय करने में इस प्रतिबंध से छूट दे दी जाये । उन्होंने जो संशोधन[1] प्रस्तावित किया उसके अनुसार अनुच्छेद 220 का पाठ निम्न रूप का होता :—

> "कोई व्यक्ति जो इस संविधान के प्रारंभ के बाद उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उस उच्च न्यायालय और उसके अधीनस्थ न्यायालयों में अभिवचन या कार्य न करेगा अथवा न्यायिक या अर्धन्यायिक नियोजन से भिन्न कोई पद धारण न करेगा ।"

उन्होंने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा निवृत्ति की आयु बढ़ा कर 65 करने और उन्हें समुचित पेंशन देने पर भी जोर दिया ।[2] उन्होंने कहा कि यदि ऐसा न किया जाए तो वे "प्रतिबन्ध" को हटाने का समर्थन करने के पक्ष में होंगे ।

श्री फ्रैंक एन्थनी—संशोधन का विरोध करते हुए श्री फ्रैंक एन्थोनी ने कहा :[3]—"एक और कारण है और यह एक बड़ा खतरा है । मैं कहता हूं कि यदि आप अपनी न्याय-पालिका को आवश्यक ख्याति और सम्मान से प्रतिष्ठित करना चाहते हैं तो आपको अपने न्यायाधीशों को उच्च आसन पर बिठाना चाहिये और यदि आप उनकी सेवानिवृत्ति के पश्चात् नीचे आने और सामान्य विधि-व्यवसाय की रस्साकशी में पड़ने देंगे तो आप उन्हें उच्च आसन पर कायम नहीं रख सकेंगे । विधि-व्यवसाय के क्षेत्र की इस भयंकर होड़ में भूतपूर्व न्यायाधीश कभी-कभी अपने उच्च स्तरों से गिरने के लिये बाध्य हो जाते हैं । आप कह सकते हैं कि ऐसे मामले अपवाद हो सकते हैं किन्तु वे भूतपूर्व न्यायाधीश हैं और एक या दो अपवाद हो सकते हैं जिनसे उनकी मान हानि होगी और जिससे समस्त न्यायालय की मान हानि होगी । यह मेरी सबसे बड़ी आपत्ति है । यदि एक भूतपूर्व न्यायाधीश या दो भूतपूर्व न्यायाधीश, सेवानिवृत्त के पश्चात् विधि-व्यवसाय के क्षेत्र की रस्साकशी में प्रवेश करते हैं और इस क्षेत्र की अत्यधिक होड़ के प्रभाव में अधिक दावपेंच वाले और संदेहास्पद साधनों का आश्रय लेना आरंभ करते हैं तो वे समस्त न्यायपालिका का अपमान करते हैं । ज्योंही आप ऐसा करते हैं त्योंही आप अपनी न्यायपालिका को आलोचना और आक्रमण का लक्ष्य बना देते हैं ।"

श्री हीरेन मुखर्जी—श्री हीरेन मुखर्जी ने कहा[4] :

> मैं यह भी बताना चाहता हूं कि यह अच्छा होगा कि न्यायाधीश बिल्कुल भी अधिवक्ता न बनें । हमारे समक्ष प्रस्तुत विधेयक में यह उपबंध है कि जो न्यायाधीश सेवानिवृत्त हो चुके हैं या इस्तीफा दे चुके हैं जैसा कि मेरे मित्र श्री चटर्जी ने किया वे केवल उन न्यायालयों में विधि-व्यवसाय करने से निवारित किये गये हैं जहां उन्होंने न्यायाधीशों के रूप में कार्य किया है किन्तु मैं समझता हूं कि जो न्यायाधीश

---

1. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 322, दांई ओर का कालम (5 सितम्बर, 1956) ।

2. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 323, दांई ओर का कालम (5 सितम्बर, 1956)

3. संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम 1956 पर संसदीय कार्यवाही, पृष्ठ 337, दांई ओर का कालम, पृष्ठ 338, बांई ओर का कालम (5 सितम्बर, 1956) ।

4. संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, पृष्ठ 349 (15 सितम्बर, 1956) ।

रह चुके हैं उनको अपने जीवन के पश्चात्वर्ती क्रम में अधिवक्ताओं के रूप में बिल्कुल भी कार्य नहीं करना चाहिये। जैसा कि मैं आप से पहले निवेदन कर चुका हूं श्री चटर्जी ने बन्दी प्रत्यक्षीकरण वाले मेरे अपने मामले में ऐसा व्यवहार किया जिसके लिये मुझे उनका आभारी होना चाहिये और व्यक्तिगत रूप से मैं अनेक प्रकार से उनका आभारी हूं, किन्तु दूसरी ओर—मैं समझता हूं इस सदन में बहुत से मेरे मित्र मुझसे सहमत होंगे—उदाहरणार्थ श्री चटर्जी को (मैं बहुत आदर पूर्वक बोल रहा हूं) वकालत करने में अत्यधिक आनंद आता है और अत्यधिक प्रसन्नता होती है। यह बहुत आवश्यक है कि हमारे यहां ऐसे व्यक्ति हों जिनको वकालत करने में प्रसन्नता हो और चूंकि उन्हें वकालत की कला में आनन्द आता है इसलिये वे अपने पक्ष की प्रभावपूर्ण रूप से वकालत कर सकते हैं पर इसके साथ ही कदाचित न्यायिक निर्धारण के लिए यह आवश्यक है कि हमारे यहां कुछ ऐसे व्यक्तियों का समूह भी हो जो उस प्रकार का पक्ष समर्थन न करे जिस प्रकार अनेक व्यक्ति करते हैं। श्री चटर्जी ने हमारे देश के संविधान के बारे में श्री आइवर जैनिंग्स की एक पुस्तक में से उद्धरण दिये हैं। मैंने भी उस पुस्तक पर एक दृष्टि डाली है क्योंकि वह मेरे पास की एक मेज पर पड़ी थी। मैंने देखा है कि श्री आइवर जैनिंग्स ने एक स्थान पर एक खास बात लिखी है। उन्होंने कहा है कि भारत में शायद वकील-राजनीतिज्ञों ने सार्वजानिक मामलों में जितना भाग लिया है उतना विश्व के किसी अन्य भाग में वकील-राजनीतिज्ञों ने वैसा नहीं किया है। उन्होंने कहा है : 'एक वकील होने के नाते मुझे इससे प्रसन्नता होनी चाहिये किन्तु मेरा यह अनुभव रहा है कि साधारणतया वकील-राजनीतिज्ञ न तो अच्छे वकील होते हैं और न अच्छे राजनीतिज्ञ।' मैं यह नहीं चाहता कि हमारे यहां सदा ही वकील न्यायाधीश रहें। मैं तो ऐसा न्यायाधीश चाहता हूं जो अपने व्यवसाय के प्रारंभिक प्रक्रम में ही अच्छा वकील होने के नाते उस कारण न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर दिया जाये। इसके पश्चात् उसे न्यायिक स्वभाव का विकास करना प्रारंभ करना चाहिये। यही कारण है कि मैं निर्वाचन आयुक्त या नियंत्रक-महालेखा परीक्षक जैसे पदों के लिये न्यायिक स्वभाव वाले व्यक्ति चाहता हूं। न्यायाधीशों को, एक बार न्यायाधीश हो जाने पर, यह निश्चय कर लेना चाहिये कि वे इस या उस अधिकरण के समक्ष मामलों में वकालत नहीं करेंगे। यही कारण है कि मैं अपने मित्र श्री के. के. वसु के संशोधन का समर्थन करता हूं जिसमें कहा गया है कि न्यायाधीशों को सेवानिवृत्ति के पश्चात विधि-व्यवसाय करने की इजाजत नहीं देनी चाहिए और उन्हें न्यायिक या अर्धन्यायिक पदों से भिन्न, जिन पर नियुक्तियां केवल भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा या सुसंगत उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों द्वारा की जाती हैं, कोई अन्य पद स्वीकार नहीं करने चाहिये। इसके अलावा अन्य प्रकार के पद इस प्रकार के पद नहीं होने चाहिये जिनको कि न्यायपालिका कामना करे।"

संयुक्त समिति द्वारा यथा प्रतिवेदित विधेयक पर बहस[1] का जवाब देते हुए गृह राज्य मंत्री श्री बी. एन. दातार ने इस बात की चर्चा की कि अनुच्छेद 220 के (जैसा कि वह उस समय था) अनमनीय उपबन्ध में "उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का पद स्वीकार करने में प्रमुख या वरिष्ठ अधिवक्ताओं में कुछ अरुचि या अनिच्छा सी पैदा कर दी है।" उन्होंने वकालत के पेशे से होने वाली ऊंची आमदनी की चर्चा की और कहा कि, "सेवा-निवृत्ति के पश्चात् अर्थात् 60 वर्ष की आयु के पश्चात् विधि-व्यवसाय करने की मानवीय आकांक्षा की, यदि ऐसी आकांक्षा हो, तुष्टि के लिए . . . . हमें कुछ अपवाद करने होंगे" और "इस मामले में जिसे मानवीय कमजोरी के रूप में समझा जा सकता है हमें

1. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 351, 352।

कुछ रियायत देनी पड़ी । यही कारण है कि हमने केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के ही मामले में परिवर्तन किया है उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के मामले में नहीं ।" उन्होंने "बिल्कुल ही विरोधी मतों" की चर्चा की जो कि इस विषय पर व्यक्त किए गए थे एक यह कि सेवा निवृत्त न्यायाधीशों द्वारा विधि-व्यवसाय पर पूर्णतः प्रतिबंध लगा दिया जाये दूसरा यह कि उन्हें अन्य अधिकरणों के समक्ष भी विधि-व्यवसाय करने की अनुज्ञा दी जाए ।

विधेयक में अपनाए गए विचार की व्याख्या करते हुए श्री दातार ने कहा[1] :

> "हम नहीं चाहते कि हमारे उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश किसी जिला या सेशन न्यायाधीश या प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के समक्ष जाएं और वकालत करें । सम्भव है कुछ मामलों में ऐसी प्रवृत्ति हो लेकिन हमने उनके विधि-व्यवसाय को केवल अन्य उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय तक सीमित कर दिया है । अतएव मैं निवेदन करूंगा कि जहां तक विधि-व्यवसाय का सम्बन्ध है कुछ रियायत देनी थी और हमने यह रियायत दे दी है । यदि 60 वर्ष के पश्चात् कोई व्यक्ति विधि-व्यवसाय करना चाहता है तो उसे उस प्रभाव क्षेत्र में काम नहीं करना चाहिए जिसमें उसने उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में काम किया था और जिला न्यायाधीश के रूप में भी काम किया होगा और विधि-व्यवसाय भी किया होगा । इसलिए उसे अन्य सुरक्षित क्षेत्रों को ले जाया गया है और उसे यह अधिकार दिया गया है कि यदि वह लाभ उठा सकता है तो अन्य उच्च न्यायालयों में विधि-व्यवसाय कर सकता है और यदि समुचित समझे और सम्भव हो तो उच्चतम न्यायालय में भी विधि-व्यवसाय कर सकता है । इसका प्रयोजन सर्वोत्तम अधिवक्ताओं को मान्यता प्रदान करना है ।"

विधेयक का सुसंगत खण्ड अन्ततः उस रूप में पास किया गया जिसमें वह संयुक्त समिति ने प्रतिवेदित किया था ।[2]

1. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956 पर संसदीय कार्यवाही, जिल्द 1, पृष्ठ 353 ।

2. संविधान (नवम् संशोधन) विधेयक, 1956, जिल्द 1, पृष्ठ 358 ।

78-L/P(D)61MofLJ&CA—4000—18-9-79-GIPS